प्रेमचन्द पर 25 पुस्तकें, अन्य विषयों पर 24 पुस्तकें, प्रेमचंद विश्वकोश के दो खंड, प्रेमचंद कहानी रचनावली 6 खंड, प्रेमचंद पर 1400 पृष्ठों के अज्ञात एवं अप्राप्य साहित्य की खोज तथा प्रकाशन करने वाले डॉ. कमाल किशोर गोयनका, देश-विदेश में 'प्रेमचंद स्कॉलर' और 'प्रेमचंद विशेषज्ञ' के रूप में विख्यात हैं। लगभग 3000 मूल दस्तावेज़ों, पत्रों, पांडुलिपियों, फोटोग्राफों का संग्रह करने वाले हैं । हिन्दी के प्रवासी साहित्य के मूल्यांकन के लिए तीन दशकों से कार्यरत हैं हिन्दी का प्रवासी साहित्य हिन्दी का पहला ऐसा ग्रन्थ है, जो गम्भीर शोध की आधारशिला है ।

विदेशों में लिखा जा रहा साहित्य नए अस्तित्वबोध व आत्मबोध का साहित्य : डॉ. कमलकिशोर गोयनका

विदेशों में लिखे जा रहे हिन्दी साहित्य को क्या प्रवासी साहित्य कहना उचित है? इस मुद्दे पर प्रख्यात लेखिका **डॉ. सुधा ओम ढींगरा की डॉ. कमल किशोर गोयनका** *से बेबाक बातचीत। डॉ. सुधा कनाडा से प्रकाशित पत्रिका हिंदी चेतना की संपादक हैं।*

गोयनका जी, आप का जन्म तो एक मारवाड़ी परिवार में हुआ, फिर साहित्य की तरफ़ आप का रुझान कैसे हुआ? वे कौन से आरंभिक प्रेरणा स्त्रोत थे, जिन्होंने आप को साहित्य-पथ का पथिक बनाया।

सुधा जी, आप ठीक कहती हैं, मेरा जन्म एक मारवाड़ी परिवार में हुआ, जो व्यापारी था और पुश्तैनी ज़मींदारी थी, परन्तु बी.ए. के शिक्षण काल से ही मुझमें साहित्य के संस्कार उत्पन्न होने लगे। मेरे पिता जी का बड़ा पुस्तकालय था और मेरे माता -पिता को स्वाध्याय का बड़ा शौक था। मैंने इस पुस्तकालय से धार्मिक और सामाजिक साहित्य पढ़ा और 'मर्यादा', 'प्रभा', 'चाँद', 'माधुरी', 'हंस' आदि अनेक पत्र -पत्रिकाएँ तो पढ़ी हीं। मैं समझता हूँ, साहित्य की ओर आने की प्रवृत्ति ईश्वर ने ही प्रदान की, किन्तु इस पारिवारिक परिवेश ने उसे मज़बूत बनाया। बी.ए. करते समय एक कवि-गोष्ठी में जय शंकर प्रसाद बना था और 'आंसू 'के कुछ पदों का मैंने पाठ किया था। बस साहित्य प्रेम ही दिल्ली ले आया और हिन्दी साहित्य से एम.ए की परीक्षा प्रथम श्रेणी में पास की। इसके उपरांत वर्ष 1962 में मैं दिल्ली का प्राध्यापक बना और फिर साहित्य ही मेरा जीवन बन गया।

आपने अपने साहित्य प्रेम को पहचाना, और साहित्य आप का जीवन बन गया, परन्तु अध्ययन और अनुसन्धान का विषय 'प्रेमचंद' ही क्यों चुना ?

सुधा जी, मुझे अब लगता है कि नियति ने ही मुझे इसके लिए चुना था। मैं एम .ए.(1961) करने के बाद पी-एच. डी के लिए शोध विषय के चयन की समस्या से जूझ रहा था। उस समय डॉ. नगेन्द्र हिंदी-विभाग के अध्यक्ष थे और उनसे बातचीत करने में विद्यार्थी डरते थे । मेरे प्रति वे कुछ उदार थे, क्योंकि मैं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ था। मैंने आप को बताया है कि मैं जयशंकर प्रसाद का प्रेमी था और मैंने बातचीत में उनसे जयशंकर प्रसाद पर कार्य करने का प्रस्ताव किया, किन्तु वे तैयार नहीं हुए। इस पर मैंने उन्हें प्रेमचंद पर कार्य करने की इच्छा व्यक्त कि तो उन्होंने मुझसे कुछ विषय लिखकर लाने को कहा तो मैंने प्रेमचंद पर उन्हें सोलह विषय लिख कर दिए और उन्होंने 'प्रेमचंद के उपन्यासों का शिल्प विधान' विषय पर अपनी स्वीकृति प्रदान की। डॉ.नगेन्द्र के इस निर्णय ने मेरा भविष्य तय कर दिया, किन्तु मैं पी-एच. डी करने के बाद अन्य शोद्यार्थियों की तरह चुप बैठने को तैयार नहीं था।

तो आप ने अन्य शोद्यार्थियों से अलग क्या किया?

-मुझे सन 1972 में पी ?च. डी की उपाधि मिली और कुछ समय बाद ही 'प्रेमचंद विश्वकोश '(पांच खंड) की योजना की परिकल्पना की और प्रेमचंद के बड़े पुत्र श्रीपतराय का सहयोग लिया और प्रेमचंद की अज्ञात अप्राप्य रचनाओं, पत्रों, पाण्डुलिपियों, दस्तावेज़ों की खोज में लग गया। इसके आरम्भ में गंगाप्रसाद विमल भी मेरे साथ थे, परन्तु वे प्रगतिशील थे और उस समय नए-नए बने प्रगतिशील डॉ. सुधीश पचौरी ने 'प्रगतिशील लेखक संघ' के एक अधिवेशन में मुझ जैसे 'गाय छाप' तथा हिन्दू के साथ सहयोग करने पर उनकी भर्त्सना की और कहा कि विमल को उस अपराध में 'प्रगतिशील लेखक संघ' से निकाल बाहर करना चाहिए। इस पर विमल इतने भयभीत हुए कि उन्होंने मेरा साथ छोड़ दिया। यह एक प्रकार से अच्छा ही हुआ। यदि विमल मेरे साथ रहते तो उनकी तथाकथित प्रगतिशीलता

बाधक ही बनती। मैं अब पूरी तौर पर प्रेमचंद के प्रति समर्पित हो गया और मेरे मन में प्रेमचंद को लेकर तरह-तरह की कल्पनाएँ जन्म लेने लगीं। इसके बाद 'प्रेमचंद-विश्वकोश' (दो खंड) सन 1981 में छपे और जितना व्यापक उसका स्वागत हुआ, उसने तो मुझे हमेशा के लिए प्रेमचंद का बना दिया।

चलो अनुसन्धान के लिए प्रेमचंद जी को चुन लिया पर आपु ने तो जीवन की हर ऋतु प्रेमचंद साहित्य को दे दी। ऐसा क्या है प्रेमचंद साहित्य में। आज कल तो इस पर बहुत से आक्षेप लगाये जा रहे है और कई तरह की भ्रांतियां फैलाई जा रही है ?

-आपके इस प्रश्न का क्या उत्तर दूँ? मैंने प्रेमचंद पर काम करते समय यह कभी नहीं सोचा कि मेरे जीवन की कितनी ऋतुएं, कितने वसंत व्यतीत हो गए। धुन थी तो यही कि यह काम पूरा होना चाहिए जिससे दूसरे काम पर लगूं।अब जब मैं 73 वर्ष का हो गया हूँ तो समय का, ऋतु का बोध अवश्य रहता है कि समय अब कम है और काम बहुत है। किसी भी बड़े काम में आपको अपनापन, अपना अस्तित्व एवं काल-बोध विस्मृत करना होता है। संभवत: इसे ही समाधि की दशा कहा गया है। इसमें जन्म-मृत्यु, रात-दिन आदि की चेतना विलुप्त हो जाती है और बस काम ही काम और लक्ष्य ही ध्यान में रहता है। यह स्थिति इसलिए बनी कि प्रेमचंद-साहित्य आपको अपने में लीन कर लेता है, आप प्रेमचंदमय हो जाते है, प्रेमचंद को जब आप उनकी दृष्टि से देखते है और अपने विचारों का उन पर आरोपण नहीं करते तो प्रेमचंद अपने सारे दरवाज़े खोलकर आपके मन में बैठ जाते हैं, फिर आप प्रत्येक वस्तु में उनकी ही छवि देखते हैं। कालिदास, तुलसीदास और प्रेमचंद का साहित्य ऐसा ही है, जिसमें गहरे उतर कर ही मोती तलाश किए जा सकते हैं । जहाँ तक प्रेमचंद पर लगे आक्षेपों और फैलाई जाने वाली भ्रांतियों का सवाल है, ऐसा अधिकांश बड़े लेखकों के साथ होता है। हिंदी के प्रगतिशील लेखक, अज्ञेय को व्यक्तिवादी तथा अमेरिकन एजेंट कहते रहे हैं, किन्तु डॉ. नामवर सिंह जैसे प्रगतिशील भी उन्हें बड़ा लेखक मान रहे है। प्रेमचंद पर दलित लेखक कई प्रकार के आरोप लगा रहे हैं, उन्होंने 'रंगभूमि' उपन्यास को जलाया भी, किन्तु प्रेमचंद की महानता और कालजयीत्व अक्षुणं रहेगा। उन जैसा कोई दूसरा लेखक हिंदी में क्या, किसी भारतीय भाषा में नहीं है।

आप के प्रेमचंद सम्बन्धी शोध कार्यों से देश-विदेश में आप को खूब प्रतिष्ठा मिली, किन्तु भारत के कुछ प्रगतिशील लेखकों ने आप के कार्य की या तो उपेक्षा की है या उसकी तर्कहीन आलोचना की है। इन प्रगतिशीलों का आप के प्रति ऐसे आक्रोश तथा उपेक्षा का क्या कारण है?

- सुधा जी, आप ठीक कहती है कि मेरे प्रेमचंद सम्बन्धी कार्यों की देश-विदेश में खूब प्रशंसा हुई है। भारत में जैनेन्द्र, धर्मवीर भारती, प्रभाकर माचवे, चन्द्रकान्त वांदिवडेकर, विष्णुकान्त शास्त्री, कल्याणमल लोढ़ा, अमृतराय, अमृतलाल नागर, इंद्रनाथ मदान, रमेश कुंतल मेघ, गोपाल राय, देवेश ठाकुर, पुष्पपाल सिंह, विनय, मृणाल पाण्डे और न जाने कितने लेखकों ने मेरे कार्यों पर लिखा है और विदेश में इंडिया आफिस लाइब्रेरी ने अपनी 'प्रेमचंद' पुस्तिका (1980)में, प्रो.गोविन्द नारायण ने अपनी अंग्रेजी पुस्तक 'मुंशी प्रेमचंद '(1978) में जो अमेरिका बोस्टन स्थित प्रकाशन जी. के. हॉल एंड कंपनी ने प्रकाशित की थी, प्रेमचंद के विशेषज्ञ के रूप में मेरा उल्लेख किया है। ध्यान रहे, तब तक मेरा 'प्रेमचंद-विश्वकोश' (1981) छपा नहीं था। जर्मनी के प्रो. लोथार लुत्से के आग्रह पर मेरी एक पुस्तक 'प्रेमचंद-शतरंज के खिलाड़ी' के वे सह लेखक बने जो प्रेमचंद शताब्दी वर्ष 1980 में पूर्वोदय प्रकाश नई दिल्ली से छपी थी। सुधा जी, डॉ. लुत्से से मेरी भेंट कोलकत्ता में हुई थी 1979 में और वे मेरे प्रेमचंद सम्बन्धी कार्यों के प्रशंसक बन चुके थे। जर्मनी में हिंदी प्रोफेसर तातियाना ओरन स्केइया ने सन 2004 में मेरे पर एक लेख लिखा था जो जर्मन पत्रिका में छपा था। इटली के प्रोफेसर अमबर्टो नरदेला (नेपल्स, इटली) ने 'कफन' कहानी के अंग्रेज़ी अनुवादों पर एक पुस्तक इटेलियन भाषा में लिखी जिसका इटेलियन में शीर्षक है– *ÓIL RACCONTO PIU FAMOSO DELLE LETTERATURE URDU E HINDI KAFANÓ*. इसका प्रकाशन नेपल्स से 1998 में हुआ और 287 पृष्ट की यह शोध-पुस्तक मेरे द्वारा प्रदत्त सामग्री के आधार पर लिखी गई। मॉरिशस में अभिमन्यु अनत ने वहाँ के अंग्रेज़ी- हिंदी अख़बारों एवं पत्रिकाओं में मेरे साहित्यिक कार्यों पर लेख लिखे। यह मैंने आप को एक संक्षिप्त-सा विवरण दिया है, प्रगतिशीलों के आक्रोश का एक बड़ा कारण यह भी है कि उन्होंने प्रेमचंद पर जो मार्क्सवादी एकाधिकार बनाया था, जो तथ्यहीन एवं तर्कहीन मिथक गढ़े थे, मेरे शोध निष्कर्षों से छिन्न-भिन्न हो गए। विगत कई दशकों से प्रत्येक प्रगतिशील एक ही प्रकार की व्याख्या करता था, कोई नयी बात कहने की सम्भावना ही समाप्त कर दी थी। ये नहीं चाहते थे कि प्रेमचंद पर कोई अप्रगतिशील काम करे और उनके भ्रामक निष्कर्षों तथा प्रेमचंद को इस्तेमाल करने की राजनीतिक साजिश को निरावृत करे। प्रगतीशीलों ने मेरे साथ कुछ नया नहीं किया। इन्होंने हिंदी के अनेक लेखकों का ऐसा ही चरित्र हनन तथा अपमान किया है। यहाँ तक कि उन्होंने डॉ. रामविलास शर्मा, त्रिलोचन शास्त्री तक को अपमानित किया और उनकी निंदा की।

प्रेमचंद के बाद आपने विदेशों में लिखे जा रहे हिन्दी साहित्य पर काम किया है। कई पुस्तकें और 'हिन्दी का प्रवासी साहित्य' ग्रन्थ भी लिखा है। जिज्ञासा है कि आप का रुझान और लगाव विदेशों में लिखे जा रहे हिन्दी साहित्य के प्रति कैसे हुआ?

- हुआ यह कि वर्ष 1980 में प्रेमचंद जन्म-शताब्दी पर मैंने दिल्ली में ' प्रेमचंद जन्म- शताब्दी राष्ट्रीय समिति' का गठन किया। जैनेन्द्र कुमार इसके अध्यक्ष थे और मैं महामंत्री तथा तत्कालीन प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गाँधी इसकी संरक्षक थीं। मेरी प्रेरणा से मॉरिशस में प्रेमचंद जन्म-शताब्दी का समारोह आयोजित हुआ और भारत सरकार ने मुझे और जैनेन्द्र को अपना प्रतिनिधि बना कर भेजा। मैंने मॉरिशस में प्रेमचंद के मूल दस्तावेज़ों, पत्रों, पांडुलिपियों, फोटोग्राफों की एक प्रदर्शनी लगाई जिसका उद्घाटन प्रधानमंत्री डॉ. शिवसागर राम गुलाम ने किया। इसी समय मेरी भेंट अभिमन्यु अनत तथा अन्य प्रतिष्ठित लेखकों से हुई । वहाँ मैं हिन्दी लेखकों के प्रेम से इतना अभिभूत हुआ कि लौटते समय मैंने संकल्प किया कि मॉरिशस के हिन्दी साहित्य के भारत में प्रचार-प्रसार तथा प्रतिष्ठा के लिए जीवन- पर्यन्त काम करता रहूँगा। उसके बाद मैं आज तक मॉरिशस, अमेरिका, इंग्लैण्ड, सूरीनाम, आदि देशों में भारतवंशियों द्वारा हिन्दी में रचे साहित्य के प्रचार-प्रसार तथा प्रतिष्ठा के लिए निरन्तर काम करता

रहा हूँ। हिन्दी के प्रवासी साहित्य से मुझे प्रेमचंद जैसा ही प्रेम हो गया है।

गोयनका जी, जिस विषय पर हम बात कर रहे हैं उसकी जानकारी हमारे लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है आप के विवरण को कोई अन्यथा नहीं लेगा ?

– अब मैं आपके प्रवासी साहित्य के नामकरण तथा उस पर कुछ प्रवासी लेखकों की आपत्ति के प्रश्न को लेता हूँ। मुझे मालूम है कि कुछ लेखकों ने यह आपत्ति उठाई है कि साहित्य प्रवासी नहीं होता और प्रवासी कहकर आरक्षण मांगना अनुचित है। मैं कई ऐसे प्रवासी साहित्यकारों को जानता हूँ जो प्रवासी संकलनों में छपते हैं, छपना चाहते हैं पर प्रवासी साहित्यकार कहलाना पसंद नहीं करते, इसके लिए बड़े – बड़े वक्तव्य देते हैं, पर यह दोहरी नीति क्यों

यह ठीक है, साहित्य प्रवासी नहीं होता, किन्तु उसका लेखक प्रवासी है और प्रवासी लेखक के रचे साहित्य को प्रवासी कहना क्यों अनुचित होना चाहिए? असल में विदेशों के रचनाकारों द्वारा रचे साहित्य के लिए प्रवासी साहित्य इतना प्रचलित तथा लोकप्रिय हो गया है कि अब उसका प्रयोग बन्द करना कठिन है। वैसे ही *प्रवासी* शब्द से इस साहित्य को हाशिये पर डालने तथा आरक्षण की सुविधा देने के लिए नहीं है । यह तो इस साहित्य की पहचान और विशिष्टता के लिए है। 'प्रवासी' शब्द लेखकों के अपमान के लिए नहीं उनके सम्मान के लिए है। उनकी अलग पहचान के लिए है और उनके स्वतंत्र मूल्यांकन की परंपरा को आरंभ करने के लिए है। हिंदी के अधिकांश प्रवासी लेखकों को उस प्रवासी शब्द पर आपत्ति नहीं है। वे अपनी विशिष्टता के साथ हिंदी की मुख्य धारा के अंग बने रहते हैं। ऐसे स्थिति में वे क्यों अपनी पहचान, अपना अस्तित्व मुख्य धारा में विलीन करना चाहेंगे ?

यहाँ मैं आप से सहमत नहीं..विदेशों के अधिकांश हिंदी लेखकों को प्रवासी शब्द पर आपत्ति है। विदेशी भाषाओं में 'प्रवासी' शब्द साहित्य के लिए प्रयोग नहीं किया जाता। अंग्रेज़ी में किसी भी देश में बैठ कर लिखा गया साहित्य अंग्रेज़ी साहित्य होता है। मैं ऐसे बहुत से फ्रेंच लेखकों को जानती हूँ जो अमेरिका में बैठ कर फ्रांसीसी भाषा में लिखते हैं पर वे प्रवासी फ्रांसीसी लेखक नहीं सिर्फ फ्रेंच लेखक कहलवाए जाते हैं। हिन्दी साहित्य में ऐसा क्यों है.. ?

– सुधा जी, मैं आपकी बात से सहमत हूँ कि विदेशी भाषाओं के प्रवासी लेखकों के साहित्य को उन देशों में प्रवासी–साहित्य नहीं कहा जाता है। मेरा ज्ञान सीमित है, परन्तु रूस, चीन, जापान की क्या स्थिति है कह नहीं सकता, किन्तु हिंदी में प्रवासी लेखकों के साहित्य को यदि प्रवासी–साहित्य कहा जाता है तो यह हिंदी का तथा साहित्य का अपमान कैसे हो गया ? हिंदी का प्रवासी साहित्य अपनी अलग पहचान चाहता है और हिंदी साहित्य की मुख्य धारा का भी अंग बने रहना चाहता है। यह ऐसे ही है, जैसे छायावाद, प्रगतिवाद, नयी कविता तथा कथा साहित्य में आंचलिक उपन्यास, नयी कहानी, सचेतन कहानी, समांतर कहानी आदि अपनी स्वतंत्र सत्ता के साथ हिंदी साहित्य का हिस्सा बनी रही। प्रवासी साहित्य के रचनाकार भारत के हिंदी रचनाकारों की तुलना में भिन्न परिस्थितिओं, भिन्न परिवेश तथा भिन्न संवेदनात्मक संसार में जीते हैं। उनके सम्मुख रचनात्मक दबाब तथा रचनात्मक सरोकार भी भिन्न– भिन्न हैं।

मॉरिशस के हिंदी लेखकों की पीढ़ी तो उसी देश में जन्मी हैं, अत: वे अपने पूर्वजों के देश की अपेक्षा अपने देश की समस्याओं और तनावों में अधिक उलझे हुए हैं और उनकी रचनाओं में उनका देश अधिक बोलता है। वे हिंदी में लिख रहे हैं, इसलिए वे हिंदी के साहित्यिक समाज के हैं, लेकिन प्रवासी साहित्य की उनकी अलग पहचान को हम मिटा नहीं सकते। अमेरिका, इंग्लैंड आदि देशों के प्रवासी हिंदी लेखकों की पहली पीढ़ी ही रचना– कर्म में संलग्न है। ये वे भारतीय है जो उच्च–शिक्षा अथवा अच्छी नौकरी के लिए इन देशों में गए हैं। वहाँ आजीविका तथा सामाजिक जीवन अंग्रेज़ी भाषा से चलता है और ये रचना करते है अपनी मातृभाषा हिंदी में। यह स्थिति उन्हें भारत के हिंदी लेखकों से नितांत अलग बनाती है। ये चाहते तो अँगरेज़ी भाषा में रचना कर सकते थे, लेकिन भाषा तथा देश–प्रेम उन्हें हिंदी भाषा की ओर ले जाता है और वे स्वदेश–परदेश के द्वंद्व में अपने रचनात्मक क्षणों को जीते हैं तथा मनोभूमि और संवेदात्मक संसार की सृष्टि करते हैं ।

sudhadrishti@gmail.com

प्रेमचंद के बाद प्रवासी–साहित्य पर विशेष कार्य

गोयनका जी, संभवत: आप अकेले ऐसे आलोचक और शोधकर्मी हैं जो विदेशों में रचे जा रहे हिन्दी साहित्य को इतनी गंभीरता से लेते हैं । विदेशों में रचे जा रहे हिन्दी साहित्य को प्रवासी साहित्य कह कर मुख्य धारा से दूर किया जा रहा है । विदेशों में हिन्दी के बहुत से लेखक प्रवासी साहित्यकार कहलवाना पसंद नहीं करते, साहित्य कभी प्रवासी नहीं होता । इन्सान प्रवास में रहता है । विदेशों के हिन्दी रचनाकार सोचते है कि प्रवासी साहित्यकार कह कर उन्हें हाशिये पर डाला जा रहा है, उनका मूल्यांकन सही नहीं हो रहा । आप ने प्रेमचंद और प्रवासी साहित्य पर अपना जीवन होम कर दिया । आप उनकी इस वेदना को कहाँ तक महसूस करते है ?

– सुधा जी, यह सही है कि प्रेमचंद के बाद मैंने प्रवासी साहित्य पर विशेष कार्य किया है । हिंदी में मैं पहला लेखक हूँ जिसकी 6 पुस्तकें हिंदी के प्रवासी साहित्य पर प्रकाशित हुई हैं –अभिमन्यु अनत: एक बातचीत (1985) , 'अभिमन्यु अनत: समग्र कविताएँ (1998)' , अभिमन्यु अनत: प्रतिनिधि रचनाएँ (1999), मारीशस की हिंदी कहानियाँ" (2000), मारीशस के राष्ट्र–कवि ब्रजेन्द्रकुमार भगत 'मधुकर' काव्य–रचनावली (2003) तथा 'हिंदी का प्रवासी साहित्य'(2011) । इन छ: पुस्तकों के अतिरिक्त मैंने हिंदी के प्रवासी लेखकों की लगभग तीस पुस्तकों की भूमिकाएँ, अनेक लेखकों पर लेख एवं उनकी पुस्तकों की समीक्षाएं लिखी हैं । मैंने भारत से निकलने वाली पत्रिकाओं 'साक्षात्कार' (भोपाल), 'शब्द योग' (नई दिल्ली), 'राजभाषा मंजूषा' (नई दिल्ली), 'बुलंद–प्रभा' (बुलंद शहर, उत्तरप्रदेश) आदि के प्रवासी साहित्य विशेषांक निकलवाये हैं और कुछ अन्य पत्रिकाएँ भी मेरी प्रेरणा पर ऐसे ही विशेषांक निकाल रही हैं । मैं यहाँ यह बात स्पष्ट करना चाहता हूँ कि जो विवरण मैंने आप को बताया है, आत्मा–प्रशंसा के लिए नहीं है, बल्कि ये बताने के लिए है कि, कितनी दिशाओं में प्रवासी साहित्य के विकास और उसकी प्रतिष्ठा के लिए काम हो रहा है ।